27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 363

वयस्क होती हिंदी की बौद्धिकता

आलोक टण्डन

समाज-विज्ञान विश्वकोश (छह खण्ड)
सम्पादक : अभय कुमार दुबे
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
पृष्ठ 2279+336+362, मूल्य : 6000 रुपये
(छह जिल्दों में)

समीक्षा

हिंदीभाषी प्रदेशों में समाज-विज्ञान और मानविकी के तहत आने वाले विषयों के इर्द-गिर्द होने वाली विचार गोष्ठियों में भाग लेने का जिसे थोड़ा भी अनुभव है वह इस बात से नावाक़िफ़ नहीं है कि आधुनिक विमर्श के किसी परचे को हिंदी में तैयार करने में कितनी दिक़्क़तें पेश आती हैं। हिंदी में विचार साहित्य की कमी पग-पग पर खटकती है और अंग्रेज़ी या उसके यांत्रिक अनुवाद का सहारा लेना ही पड़ता है। इस श्रमसाध्य यात्रा को बड़ा धक्का तब लगता है जब श्रोताओं के बीच ऐसे विरले ही मिलते हैं जिन्हें आधुनिक प्रत्ययों और उनसे जुड़े

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 364

इसमें भारतीय दर्शन, समाज, संस्कृति, आधुनिकता और इतिहास पर विशेष रूप से केंद्रित 430 प्रविष्टियाँ हैं जो भारतीय राज्य, भारतीय लोकतंत्र, भारतीय सेकुलरवाद, दलित-विमर्श, हिंदुत्ववादी विमर्श, भारत के राजनीतिक दलों और राज्यों की राजनीति की भी पर्याप्त जानकारी देती हैं। इस कारण यह विश्वकोश समसामयिक भारतीय सामाजिक-राजनैतिक विमर्श के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। किसी रैडिकल या परम्परावादी दुराग्रह से परे इसमें भारतीय धर्म-दर्शन के उन विचारकों का परिचय देने वाली प्रविष्टियाँ भी हैं जिन्हें पश्चिम और अंग्रेज़ी द्वारा थमाए गये सिद्धांतों के प्रभाव में लगभग नकार दिया जाता रहा है।

सिद्धांतकारों के बारे में परिचयात्मक जानकारी भी हो। सारा विमर्श संवादहीन होकर रह जाता है और हम सुनने वालों के अंग्रेज़ी अज्ञान और हिंदी में आधुनिक विचार सामग्री की कमी का रोना रोते रह जाते हैं। इस पृष्ठभूमि में ऐसे किसी भी प्रयास का स्वागत है जो इस वैचारिक शून्य से निज़ात दिला सके। अभय कुमार दुबे द्वारा सम्पादित *समाज-विज्ञान विश्वकोश* काफ़ी दूर तक यह शून्य भरने में सक्षम है। इसलिए सम्पादक अपने इस साहसपूर्ण, श्रमसाध्य और सफल आयोजन के लिए प्रशंसा और बधाई के पात्र हैं। लेकिन चूँकि हिंदी में यह ऐसा प्रथम प्रयास है, इसलिए महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के साथ इसकी कुछ कमिओं को भी रेखांकित करना ज़रूरी है ताकि उन्हें अगले संस्करणों में दूर किया जा सके।

तीन हज़ार पृष्ठों और छह खण्डों में समाहित समाज-विज्ञान और मानविकी के इस विश्वकोश की पहली महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यही है कि यह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के 26 विद्वानों के मार्गदर्शन में 60 समाज-वैज्ञानिकों द्वारा अनुवाद का सहारा लिए बिना मूल हिंदी में तैयार किया गया है। इसकी दूसरी विशेषता अंतरानुशासनिकता है जो इनसाइक्लोपीडिया का निहितार्थ है। अनुशासनगत सीमाओं का सम्मान करते हुए भी, बदलते वैचारिक परिदृश्य के अनुरूप, समाज-विज्ञान और मानविकी के बीच खड़ी की गयी कृत्रिम दीवार फाँद कर उनकी परस्पर-निर्भरता और परस्पर-व्यापकता को रेखांकित करने का इसमें सफल प्रयास किया गया है। इसका प्रमाण कोश की 1015 प्रविष्टियों में अर्थशास्त्र की 104, इतिहास की 107, अंतर्राष्ट्रीय संबंध की 52, दर्शन की 135, राजनीति शास्त्र की 448, मीडिया फ़िल्म और टीवी अध्ययनों की 50, स्त्री और सेक्शुअलिटी-अध्ययन की 69, समाज शास्त्र और मानवशास्त्र की 140, गाँधी-विचार से संबंधित 32 और मार्क्सवाद से संबंधित 117 प्रविष्टियों को स्थान प्राप्त होना है। साथ ही इसमें 229 प्रविष्टियाँ उपरोक्त अनुशासनों के अग्रणी चिंतकों और महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं, बहसों, आंदोलनों और क्रांतिओं के बारे में हैं जिन्हें किसी एक अनुशासन में सीमित नहीं किया जा सकता। इस विश्वकोश की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें भारतीय दर्शन, समाज, संस्कृति, आधुनिकता और इतिहास पर विशेष रूप से केंद्रित 430 प्रविष्टियाँ हैं जो भारतीय राज्य, भारतीय लोकतंत्र, भारतीय सेकुलरवाद, दलित-विमर्श, हिंदुत्ववादी विमर्श, भारत के राजनीतिक दलों और राज्यों की राजनीति की भी पर्याप्त जानकारी देती हैं। इस कारण यह विश्वकोश समसामयिक भारतीय सामाजिक-राजनैतिक विमर्श के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इस कोश की यह भी है कि किसी रैडिकल या परम्परावादी दुराग्रह से परे इसमें भारतीय धर्म-दर्शन के उन विचारकों का परिचय देने वाली प्रविष्टियाँ भी हैं जिन्हें पश्चिम और अंग्रेज़ी द्वारा थमाए गये सिद्धांतों के प्रभाव में लगभग नकार दिया जाता रहा है। इसके अलावा विश्वकोश में हिंदी के निर्माताओं, साहित्य और विचार-जगत पर भी काफ़ी सामग्री है।

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 365

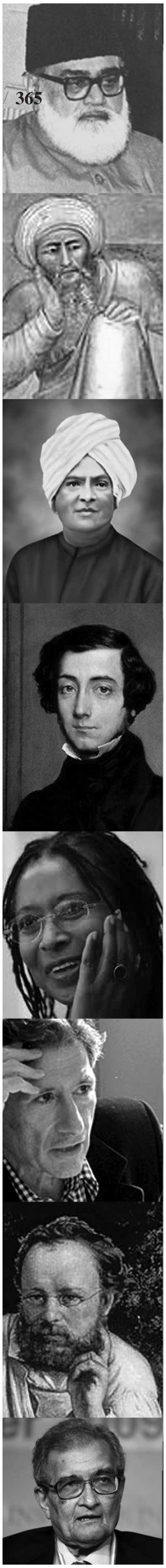

विश्वकोश की उपरोक्त विशेषताओं में, मेरी दृष्टि में सबसे चुनौतीपूर्ण इसका भाषा-केंद्रीयता का आग्रह ही है। आज भी रचनात्मक साहित्य और पत्रकारिता ही हिंदी की प्रधान गतिविधि है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों के लिए हिंदी मुख्यत: अनुवाद की भाषा रही है। अनुवाद की इस जकड़ से निकाल कर हिंदी में ही समाज-विज्ञान और मानविकी की शास्त्र रचना के योग्य लेखकों को खोजना, उनसे कसा हुआ विमर्शी पाठ लिखवाना, कोश की समरूपता बनाए रखने के लिए उन प्रविष्टियों का शोधन, परिवर्द्धन और सम्पादन किसी महायज्ञ से कम नहीं था। ऐसे लेखकों की कमी और समय से उनके बारे में जानकारी न मिल पाना ही शायद इस बात के पीछे है कि कोश में सौ से ज़्यादा प्रविष्टियाँ लिखने वाले लेखक भी हैं और एक प्रविष्टि लिखने वाले भी। निश्चय ही इससे थोड़ा असंतुलन तो आना ही था क्योंकि किसी एक लेखक की विशेषज्ञता की सीमा होती है, उसे लाँघने पर प्रविष्टियों की गुणवत्ता में अंतर आ जाता है। लेकिन, देर से ही सही, विश्वकोश के निर्माण की प्रक्रिया में, समुद्र मंथन की तरह जिस अमृत की उपलब्धि हुई है— वह इसका लेखक मण्डल ही है जो हिंदी में बौद्धिक विमर्श की आधारशिला का काम करेगा। आगे ऐसे किसी विमर्शी आयोजन के लिए अब भटकना नहीं होगा। दूसरी बड़ी उपलब्धि है हिंदी में गम्भीर विमर्श के योग्य सम्प्रेषणीय भाषा का मानक तैयार करना। इस विश्वकोश के प्रकाशन के बाद अब कोई यह नहीं कह सकता कि हिंदी में तो बौद्धिक विमर्श की सहज-सम्प्रेषणीय भाषा ही नहीं।

समुद्र मंथन की तरह जिस अमृत की उपलब्धि हुई है— वह इसका लेखक मण्डल ही है जो हिंदी में बौद्धिक विमर्श की आधारशिला का काम करेगा। आगे ऐसे किसी विमर्शी आयोजन के लिए अब भटकना नहीं होगा। दूसरी बड़ी उपलब्धि है हिंदी में गम्भीर विमर्श के योग्य सम्प्रेषणीय भाषा का मानक तैयार करना।

पाठक के लिए किसी भी विश्वकोश की उपयोगिता मात्र इसमें ही नहीं है कि उसमें उसकी ज़रूरत की सामग्री कितनी है, अपितु इसमें भी है कि सामग्री तक कितनी सहजता के साथ पहुँचा जा सकता है। उपरोक्त विश्वकोश में इसका विशेष ध्यान रखा गया है। हर खण्ड के शुरू और अंत में विस्तार से अनुक्रमणिकाएँ दी गयी हैं। प्रारम्भ में तीन अनुक्रमणिकाएँ हैं। सबसे पहले प्रविष्टि-क्रम को हिंदी में और फिर उसी प्रविष्टि-क्रम को अंग्रेज़ी में दिया गया है। तीसरी अनुक्रमणिका विषयानुसार है। अंग्रेज़ी में प्रविष्टि-क्रम देने पर कुछ शुद्धतावादी नाक— भौं सिकोड़ सकते हैं, किंतु यह युक्तिसंगत है क्योंकि कई बार हिंदी में समाज-विज्ञान में मौलिक लेखन की कमी से, हम उसमें व्यवहृत विषयों/प्रत्ययों के अंग्रेज़ी में प्रचलित नामों से हिंदी नामों के मुक़ाबले ज़्यादा परिचित होते हैं, ऐसी स्थिति में भी आवश्यक विषय/प्रत्यय की तलाश में ज़्यादा समय बरबाद नहीं होगा। किसी एक प्रविष्टि को एक से अधिक श्रेणी में रखे जाने की पात्रता का तर्क भी सही है क्योंकि ज्ञान का संसार अनुशासनों की सीमाओं में बँटा होने के बावजूद उन्हें सतत लाँघता भी रहता है। उदाहरण के लिए गाँधी और मार्क्स को किसी एक अनुशासन तक सीमित नहीं रखा जा सकता।

ऐसा कोई भी आयोजन, जो समाज-विज्ञान और मानविकी दोनों को समाहित करना चाहता हो, के सामने एक बड़ी चुनौती अनावश्यक विस्तार से बचने की होती है। किस

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 366

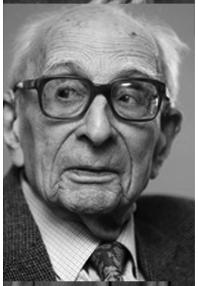

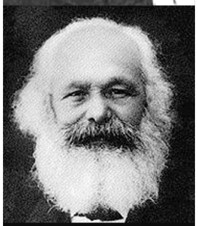
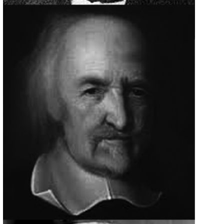

राजनीतिशास्त्र की सबसे अधिक प्रविष्टियाँ हैं जो विश्वकोश के कलेवर को एक ओर कुछ ज़्यादा ही झुका देती हैं। इसके पीछे कारण चाहे कुछ भी रहा हो (सम्पादकों की पृष्ठभूमि, लेखकों की कमी आदि), भविष्य के संस्करण में इसे सुधारने की आवश्यकता है। भारतीय दर्शन के कुछ महत्त्वपूर्ण नाम और सम्प्रदाय छूट गये हैं, जैसे भतृहरि, कृष्णमूर्ति, कृष्ण चंद्र भट्टाचार्य, के.जे. शाह, जड़व लाल मेहता, काश्मीर शैव दर्शन।

प्रविष्टि को स्थान दिया जाए और किसे छोड़ दिया जाए, इसका निर्णय बड़ी सूझबूझ की माँग करता है। अलग-अलग अनुशासनों से सम्बद्ध विश्वकोशों के सामने यह समस्या इतनी नहीं होती। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकोश में राजनीति शास्त्र की सबसे अधिक प्रविष्टियाँ हैं जो विश्वकोश के कलेवर को एक ओर कुछ ज़्यादा ही झुका देता है। इसके पीछे कारण चाहे कुछ भी रहा हो (सम्पादकों की पृष्ठभूमि, लेखकों की कमी आदि), भविष्य के संस्करण में इसे सुधारने की आवश्यकता है। लेकिन उस असंतुलन का एक लाभ भी हुआ है— समसामयिक विमर्श के विवादास्पद विषयों/आंदोलनों जैसे सोवियत समाजवाद— उत्थान और पतन, मतदान व्यवहार, भ्रष्टाचार, सेकुलरवाद, भूमण्डलीकरण और रामजन्मभूमि आंदोलन आदि पर विपुल सामग्री उपलब्ध कराई गयी है। हाँ, अतीत से संबंधित बहुत सारी सामग्री छूट गयी है जो स्थान पाने की अधिकारी थी। लेकिन उसकी चर्चा में जो इस विश्वकोश में बेहद महत्त्वपूर्ण है वह ओझल नहीं किया जा सकता। नारी, सेक्शुअलिटी, मीडिया, फ़िल्म, टी.वी. आदि अध्ययनों पर इतनी प्रामाणिक जानकारी किसी एक स्थान पर उपलब्ध कराना अपने में एक उपलब्धि ही है। इन नये उभरते विषयों को समाज-विज्ञान की मुख्य धारा में लाने का उपक्रम श्रेयस्कर है क्योंकि इन विमर्शों में गहरी पैठ की अनुपस्थिति में हम आज के बदलते सामाजिक परिदृश्य को समझने का दावा नहीं कर सकते। इस कड़ी में दलित विमर्श और संस्कृति-अध्ययन के (केवल एक-एक प्रविष्टि) को भी यथेष्ट स्थान अपेक्षित था। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे बड़े आयोजन में प्रविष्टियों को जोड़ने, पुरानी प्रविष्टियों को सुधारने और कुछ को निरस्त करने की सतत ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। विभिन्न अनुशासनों के विशेषज्ञों की राय से यह कार्य अगले संस्करण में आसानी से पूरा किया जा सकता है।

दर्शन एक पुराना विषय है जिसे विज्ञानों (प्राकृतिक और सामाजिक) की माँ भी कहा जाता है, जो अपना बहुत कुछ अपनी बेटियों को पहले ही दे चुका है किंतु अभी भी उसके पास देने को बाक़ी है। समाज-दर्शन का दर्शन और समाज-विज्ञान दोनों से गहरा नाता है। इसलिए उक्त समाज-विज्ञान कोश में दार्शनिक प्रविष्टियों का होना औचित्यपूर्ण ही है। सम्पादक ने भारतीय और पाश्चात्य दर्शन के प्रमुख दार्शनिकों और महत्त्वपूर्ण विचार-सम्प्रदायों को सँजोने का कठिन कार्य किया है क्योंकि हिंदी में ऐसे विशेषज्ञ ढूँढ़ना ही मुश्किल है जो सार्त्र, फ़ूको, देरिदा, अलथुसे, ल्योतर, हैबरमास, सॅस्यूर आदि पर अधिकार के साथ लिख सकें। भारतीय दर्शन की प्रविष्टियाँ उत्तम हैं और जो कमी रह गयी है उसे 'भारत में दर्शन शास्त्र' पर स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्र्योत्तर दशा-दिशा पर

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 367

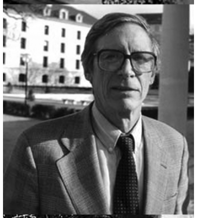

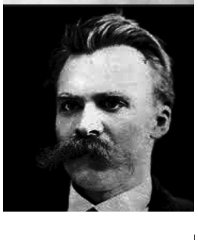

प्रविष्टियाँ देकर पूरा कर लिया गया है। फिर भी भारतीय दर्शन के कुछ महत्त्वपूर्ण नाम और सम्प्रदाय छूट गये हैं, जैसे भतृहरि, कृष्णमूर्ति, कृष्ण चंद्र भट्टाचार्य, के.जे.शाह, जड़व लाल मेहता, काश्मीर शैव दर्शन। समाज-दर्शन की दृष्टि से मनु, याज्ञवल्क्य, राम मोहन राय, ज्योतिराव फुले और नारायण गुरु पर भी विचार किया जा सकता है। इसी तरह पाश्चात्य दर्शन के कुछ महत्त्वपूर्ण दार्शनिक छूट गये हैं जिनका काम समाज-दर्शन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है जैसे हाइडैगर, विलियम जेम्स, रसेल, विट्गेंसटाइन, हरबर्ट मारक्यूज़, चार्ल्स टेलर, रिचर्ड रोर्ती, जान डिवी, गैडामर, मैकइंटायर, जिज़ेक, मार्ले पांती, रिकॅर, मार्था नुसबाम। तार्किक प्रत्यक्षवाद को भी छोड़ना ठीक नहीं। हाँ कुछ इस्लामी दार्शनिकों जैसे अल-ग़ज़ाली, अल-किंदी, इब्न खाल्दून, इब्न रशद पर प्रविष्टियाँ देखना सुखद अनुभव है। अपने नंद किशोर देवराज और असग़र अली इंजीनियर तो हैं ही।

समाजशास्त्र-मानवशास्त्र से संबधिंत प्रमुख अवधारणाओं— अतिक्रमण, अभिजन, अस्मिता, इयत्ता, अंतरंगता, करिश्मा, गृह विहीनता, मिथक, यूटोपिया, समुदायवाद, सामाजिक न्याय, सामाजिक पूँजी, भ्रांत चेतना, बेगानगी, प्रेम आदि पर प्रविष्टियाँ उक्त विश्वकोश को एक प्रत्ययात्मक गहराई प्रदान करती हैं। जाति व्यवस्था पर चार प्रविष्टियों में भारतीय सामाजिक संरचना के मूल ढाँचे के विविध आयामों को खोलने का उचित प्रयास किया गया है। जाति को लेकर छाये कुहासे को कम करने में ये काफ़ी मददगार है। भारतीय समाजशास्त्र पर दो प्रविष्टियों के माध्यम से इस विवादास्पद विषय के कई पहलुओं पर जानकारी स्वागतयोग्य है। महत्त्वपूर्ण पाश्चात्य समाज चिंतक— दुर्खाइम, कॉम्त, वेबर, मार्क्स, मीड, जिमेल, पार्संस आदि के साथ-साथ मुख्य भारतीय समाज मानवशास्त्रियों— धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी, राधा कमल मुखर्जी, जी.एस. घुर्ये, इरावती कर्वे, श्यामाचरण दुबे, धीरूभाई शेठ और त्रिलोकी नाथ मदन पर भी प्रविष्टियाँ हैं। कुछ बड़े नाम फिर भी रह गये हैं जैसे आधुनिकता के व्याख्याता एंथोनी गिडिंस, उत्तर-आधुनिकता के सिद्धांतकार ज़िगमुंट बाउमैन। भारतीय नामों में ए.आर. देसाई, योगेंद्र सिंह और टी.के. ऊमन को स्थान देने पर भी विचार अपेक्षित है। समाजशास्त्र में अनुसंधान की अन्वेषण पद्धति, समाजशास्त्र के अन्य महत्त्वपूर्ण विभागों जैसे धर्म का समाजशास्त्र और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रत्ययों जैसे वर्ण, वर्ग और जाति संबंध, विचारधारा, सामाजिक परिवर्तन, बंधुत्व आदि पर प्रविष्टियाँ अगले संस्करण में शामिल करने पर विचार किया जा सकता है।

कुछ बड़े नाम फिर भी रह गये हैं जैसे आधुनिकता के व्याख्याता एंथॅनी गिडिंस, उत्तर-आधुनिकता के सिद्धांतकार ज़िग्मुंट बाउमैन। भारतीय नामों में ए.आर. देसाई, योगेंद्र सिंह और टी.के. ऊमन को स्थान देने पर भी विचार अपेक्षित है। समाजशास्त्र में अनुसंधान की अन्वेषण पद्धति, समाजशास्त्र के अन्य महत्त्वपूर्ण विभागों जैसे धर्म का समाजशास्त्र और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रत्ययों जैसे वर्ण, वर्ग और जाति सम्बंध, विचारधारा, सामाजिक परिवर्तन, बंधुत्व आदि पर प्रविष्टियाँ अगले संस्करण में शामिल करने पर विचार किया जा सकता है।

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 368

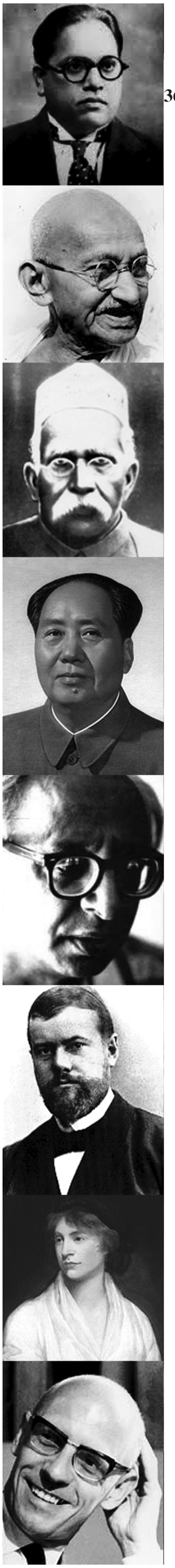

गाँधी-विचार की प्रविष्टियाँ कुछ हल्की जान पड़ती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि नयी सदी में अहिंसक प्रतिरोध आंदोलन तो बराबर हो रहे हैं, किंतु विमर्श के स्तर पर कोई नयी सोच सामने नहीं आयी है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में हमने गाँधी की रचना *हिंद स्वराज* और उनके प्रमुख अवदान सत्याग्रह पर यथेष्ट चर्चा की है जिससे उन पर काफ़ी सामग्री भी उपलब्ध हो गयी है। ऐसे में दोनों विषयों की प्रविष्टियों का विश्वकोश में न होना ठीक नहीं जान पड़ता।

अर्थशास्त्र से संबंधित प्रविष्टियों का चयन बड़ी ही सूझबूझ और संतुलित दृष्टि का परिचायक है। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण विषय और विचारक तो हैं ही, समसामयिक विमर्श की दृष्टि से उपयोगी सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराई गयी है— जैसे पण्य पूजा, प्रगति : आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य, बाज़ार समाजवाद, विश्व सामाजिक मंच, स्त्री-श्रम, नारीवाद और अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र, भारत में बहुराष्ट्रीय निगम, भारत में शेयर संस्कृति आदि। अगले संस्करण में भारत संबंधी आर्थिक प्रविष्टियों में ट्रेड यूनियन आंदोलन को और जोड़ा जा सकता है। अमर्त्य सेन के साथ जगदीश भगवती का भी स्थान अपेक्षित है। मुद्रा-स्फीति और महँगाई पर भी प्रविष्टि होना सार्थक होगा।

जो बात उक्त विश्वकोश को समाज-विज्ञान के अन्य कोशों से अलग करती है वह इसका भारतीय समाज पर फ़ोकस ही है। इस कारण कुछ ऐसी प्रविष्टियाँ भी स्थान पा सकी हैं जो समाज-विज्ञान के सामान्य कोश में शायद छोड़ दी जातीं— जैसे भारत के विभिन्न राज्यों की राजनीति पर अलग-अलग प्रविष्टियाँ। भारत से संबंधित किसी विमर्श में इनकी उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। यही बात कई ऐसे राजनीतिक व्यक्तित्वों को स्थान देने का औचित्य प्रदान करती है जो भारतीय इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण लगते हैं पर वैश्विक दृष्टि से नहीं। समाज-विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों को समेटती ये प्रविष्टियाँ भारत की एक मुकम्मल तस्वीर से अध्येता को परिचित कराती है जो भारतीय समाज को निरंतरता और परिवर्तन के साथ समझना चाहता है लेकिन अतिभारत-व्याकुलता या अंध पश्चिम-मोह से ग्रस्त नहीं है।

मार्क्सवाद और गाँधी-विचार के विमर्शों को छोड़ कर किसी समाज-विज्ञान कोश की कल्पना ही सम्भव नहीं है किंतु अधिकांशत: उनके साथ समुचित न्याय नहीं हो पाता। विशेषकर गाँधी के जाने के बाद और सोवियत यूनियन के पतन के पश्चात का विमर्श। उक्त विश्वकोश की बड़ी विशेषता यह है कि इन महत्त्वपूर्ण विमर्शों को न केवल यथोचित स्थान मिला है अपितु उन पर (कई प्रविष्टियों के द्वारा) गहराई से विचार किया गया है। विशेष रूप से मार्क्सवाद के पुराने विमर्श के साथ-साथ नयी सदी में मार्क्सवादी विमर्श पर कई प्रविष्टियाँ जो लेवोविट्ज, इस्तवान मेस्ज़ारोज़, डेविड हार्वे, टेरी ईगलटन और एरिक हॉब्सबॉम के विचारों से पाठक को परिचित कराती हैं, एक बड़ी उपलब्धि ही है। मार्क्सवाद के अंत की घोषणा करने वालों या उसमें पुन: सृजन की सम्भावनाएँ टटोलने वालों, दोनों के लिए यह सामग्री हिंदी में एक जगह उपलब्ध होना बहुतों को लाभान्वित करने वाला है, फिर चाहें वह लेखक हो, समाज-विज्ञानी हो, सामाजिक कार्यकर्ता हो या जागरूक पाठक। विशेष रूप से हिंदी में छाये मार्क्सवादी विमर्श और उसके प्रतिरोध के

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 369

विमर्श की सांस्कृतिक राजनीति के सतहीपन के संदर्भ में इन प्रविष्टियों की उपयोगिता किसी शंका से परे है। हाँ कुछ अन्य भारतीय मार्क्सवादी चिंतक जैसे श्रीपाद अमृत डांगे, बी.टी. रणदिवे भी इसमें स्थान पा सकते थे। भारत का समसामयिक माओवादी आंदोलन भी यथेष्ट स्थान नहीं पा सका है।

मार्क्सवादी विमर्श की तुलना में गाँधी-विचार की प्रविष्टियाँ कुछ हल्की जान पड़ती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि नयी सदी में अहिंसक प्रतिरोध आंदोलन तो बराबर हो रहे हैं किंतु विमर्श के स्तर पर कोई नयी सोच सामने नहीं आयी है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में हमने गाँधी की रचना *हिंद स्वराज* और उनके प्रमुख अवदान सत्याग्रह पर यथेष्ट चर्चा की है जिससे उन पर काफ़ी सामग्री भी उपलब्ध हो गयी है। ऐसे में दोनों विषयों की प्रविष्टियों का विश्वकोश में न होना ठीक नहीं जान पड़ता। कहा जा सकता है इन पर अन्य प्रविष्टियों में कुछ चर्चा हो जाने से इसकी ज़रूरत नहीं समझी गयी। किंतु मेरे विचार से गाँधी-दृष्टि की केंद्रीय अवधारणा होने से इन पर स्वतंत्र रूप से प्रविष्टि अपेक्षित थी। इसी तरह ग्राम स्वराज, प्रौद्योगिकी आदि विषयों पर भी विचार किया जा सकता है। गाँधी-विचार की प्रेरणा से पिछली शताब्दी में अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मण्डेला द्वारा चलाए गये रंगभेद विरोधी आंदोलनों पर भी चर्चा होनी चाहिए। गाँधी को प्रेरणा देने वालों में यदि तॉल्स्तॉय और थोरो हैं तो रस्किन भी हैं, उनकी उपेक्षा ठीक नहीं। बाद के विचारकों में जिनका गाँधी-विचार में प्रमुख योगदान है— रेने शार्प और नंद किशोर आचार्य पर भी स्वतंत्र प्रविष्टियाँ अगले संस्करण में देने पर विचार किया जा सकता है। समाजवादी विचारकों— नरेंद्र देव, लोहिया और जय प्रकाश नारायण को गाँधी विचार के अंतर्गत रखने पर उँगली उठाई जा सकती है।

हमारे अपने सुधीर कक्कड़ को तो छोड़ा ही नहीं जा सकता अगर भारतीय मन और साम्प्रदायिकता का मनोविज्ञान समझना है। एक समाज-विज्ञानी के लिए धर्म के मनोविज्ञान को समझना भी अभीष्ट है। इसी तरह यदि अहिंसा एक समाज-विज्ञानी की चिंता का विषय है तो अहिंसा का मनोविज्ञान क्यों नहीं?

मनोविज्ञान का पक्ष भी कुछ कमज़ोर दिखाई देता है। यद्यपि मनोविज्ञान के शरीरक्रिया शास्त्र से सम्बद्ध पक्ष को स्थान देना उक्त विश्वकोश की प्राथमिकता नहीं हो सकती किंतु समाज-मनोविज्ञान से जुड़े विषयों को स्थान दिया जा सकता है। फ्रॉयड के मनोविश्लेषण को उचित प्रतिनिधित्व मिला है, लेकिन फ्रॉयड के समकालीनों में युंग के साथ-साथ एल्फ्रेड एडलर की चर्चा भी होनी चाहिए जिन्होंने हीनता ग्रंथि जैसा महत्त्वपूर्ण विचार दिया था। नव-फ्रॉयडवादियों में भी कुछ उल्लेखनीय नाम जैसे हार्नी, क्लीन और सल्लिवन भी लिए जा सकते हैं। इसी तरह अस्मिता के सिद्धांतवेत्ता और जीवन के विभिन्न सोपानों को समझने में सहायक एरिक एरिकसन (जिन्होंने *गाँधीज़ ट्रुथ* जैसी महत्त्वपूर्ण रचना दी है), व्यवहारवादी बी.एफ़. स्किनर, अस्तित्ववादी मनोविश्लेषक आर.डी. लैंग, कार्ल रोजर्स मनुष्य के नैतिक व्यवहार को समझाने वाले कोहलबर्ग व गिलीगन और काम-व्यवहार पर रोशनी डालने वाले अल्फ्रेड चार्ल्स किंसे पर भी अगले संस्करण में स्थान देने के लिए विचार किया जा सकता है। हमारे अपने सुधीर कक्कड़ को तो छोड़ा ही नहीं जा सकता अगर भारतीय मन और साम्प्रदायिकता का मनोविज्ञान समझना है। एक समाज-विज्ञानी के

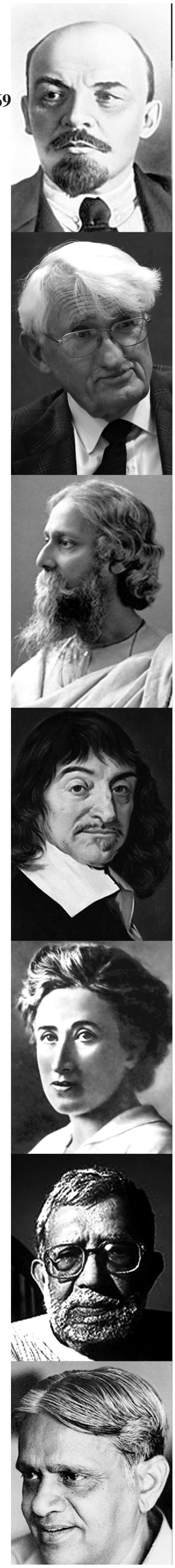

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 370

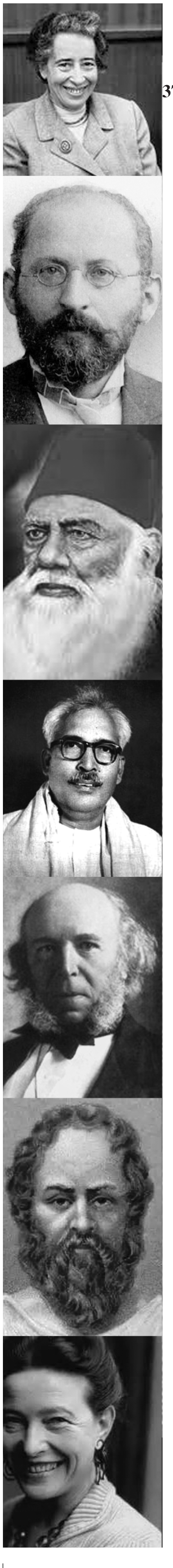

ज़रूरत इस बात की भी है कि वर्तमान में विवाह-पूर्व, विवाह-पश्चात् और विवाह के अंतर्गत यौन-व्यवहार पर भी किये गये/जा रहे अध्ययनों की जानकारी देने वाली प्रविष्टियाँ भविष्य के संस्करण में स्थान पाएँ। घर और बाहर स्त्री का यौन उत्पीड़न, हिंसा और बलात्कार, पोर्नोग्राफ़ी ऐसे विषयों को भी छोड़ा नहीं जा सकता है।

लिए धर्म के मनोविज्ञान को समझना भी अभीष्ट है। इसी तरह यदि अहिंसा एक समाज-विज्ञानी की चिंता का विषय है तो अहिंसा का मनोविज्ञान क्यों नहीं? इस क्षेत्र में बी.के. कोल, बोल्डिंग और रोलो मे के कामों/नामों पर भी विचार किया जा सकता है।

समाज-विज्ञान में इधर तेज़ी से उभरने वाला क्षेत्र स्त्री-अध्ययन का है जिसने स्वतंत्र अनुशासन के रूप में अपनी जगह बना ली है। सैद्धांतिक और प्रायोगिक, दोनों ही आयामों में अध्ययनों की बाढ़ सी आयी हुई है। यह जहाँ एक ओर बदलती स्त्री की तस्वीर पेश करता है वहीं इस बदलाव को सही दिशा देने की छटपटाहट भी दर्शाता है। नारीवाद की तीन लहरों पर प्रविष्टियाँ दिया जाना समीचीन है। स्त्री-विमर्श को आगे ले जाने वाले बड़े-बड़े नामों सिमोन द बोउआर, जूडिथ बटलर, क्रिस्तेवा आदि पर भी प्रविष्टियाँ हैं। रमाबाई पण्डिता, कमला देवी चट्टोपाध्याय और देवकी जैन जैसे महत्त्वपूर्ण भारतीय नाम भी हैं। नारीवाद का अन्य विचारधाराओं जैसे मनोविश्लेषण और राष्ट्रवाद से संबंधों पर भी प्रविष्टियाँ दी गयी हैं। फिर भी यह नाकाफ़ी-सा है क्योंकि कई सैद्धांतिक विमर्श छूट गये हैं— स्त्री और धर्म, मार्क्सवाद और नारीवाद, ज्ञान की मीमांसा की नारीवादी आलोचना, भूमण्डलीकरण और स्त्री। इन्हीं से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण नाम भी हैं— नैंसी फ्रेज़र, क्लारा ज़ेटकिन, डोना होरावे, सांड्रा हार्डिंग पर भी प्रविष्टियाँ दी जा सकती हैं। नारीवाद की तीनों लहरों की भारत में क्या प्रतिक्रिया हुई— इसका भी ब्यौरा देने वाली प्रविष्टि होना इसलिए भी ज़रूरी है कि इस पर विमर्श हो सके कि क्या कोई भारतीय ढंग का नारीवाद भी सम्भव है?

सेक्शुअलिटी अध्ययन हम भारतीयों के लिए एकदम नया विषय है जिसकी चर्चा तक पुराने समाज में वर्जित थी। इसको विश्वकोश में स्थान देकर सम्पादक ने जिस वैचारिक साहस का परिचय दिया है उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। भारतीय समाज में यौन-व्यवहार तेज़ी से बदल रहा है, पुरानी नैतिकता का ताना-बाना बिखरता जा रहा है। ऐसे में स्त्री-पुरुष संबंधों का नया व्याकरण गढ़ने की चुनौती विमर्शकारों के सामने है। दिक़्क़त यह है कि अभी भारतीय समाज पर ऐसे अध्ययन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा किये गये सर्वे-रिपोर्ट तक सीमित हैं, इसलिए किसी व्यवस्थित सामग्री का अभाव है। किंतु जिस तरह सहजीवन और समलिंगी संबंधों की वैधता का प्रश्न विवाद का विषय बना हुआ है, इन पर विश्वकोश में प्रविष्टियाँ अपेक्षित थीं। भारतीय विवाह संस्था का इतिहास लिखने वाले इतिहासकार काशीनाथ राजवाड़े को स्थान देकर अच्छा ही किया गया है। ज़रूरत इस बात की भी है कि वर्तमान में विवाह-पूर्व, विवाह-पश्चात और विवाह के अंतर्गत यौन-व्यवहार पर भी किये गये/जा रहे अध्ययनों की जानकारी देने वाली प्रविष्टियाँ भविष्य के संस्करण में स्थान पाएँ। घर और बाहर स्त्री का यौन उत्पीड़न, हिंसा और बलात्कार, पोर्नोग्राफ़ी ऐसे विषयों को भी छोड़ा नहीं जा सकता है। गाँधी पर तीनों प्रविष्टियाँ वर्गीकृत करने के स्थान पर 'गाँधी ब्रह्मचर्य और स्त्री' पर भी स्वतंत्र प्रविष्टि दी जा सकती है।

इतिहास से संबंधित प्रविष्टियाँ संख्या में भले ही कम हों लेकिन विमर्श की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विषयों के साथ न्याय करती प्रतीत होती हैं। भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न धाराओं का परिचय देने के साथ-साथ भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं— आज़ादी के लिए सशस्त्र संघर्ष, किसान संघर्ष, उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन, सन् 1857 का संग्राम का कई-कई प्रविष्टियों के माध्यम से व्यापक परिचय देने का प्रयास किया गया है। वैश्विक घटनाओं में सामंतवाद, औद्योगिक क्रांति, सोवियत समाजवाद : उत्थान और पतन, समाजवादी वसंत पर भी यथेष्ट सामग्री दी गयी है। किंतु सामयिक दृष्टि से यह चाहे कितना भी प्रासंगिक क्यों न हो, प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय और पाश्चात्य इतिहास की अवहेलना का कोई औचित्य नहीं है। सिंधु घाटी की सभ्यता, वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, मुगल काल का तो कहीं ज़िक्र ही नहीं है। इन कालों में भारतीय सभ्यता ने विभिन्न क्षेत्रों में उत्कर्ष के जिन शीर्षों को छुआ— धर्म, दर्शन, गणित, व्याकरण, कलाओं, वास्तु शिल्प, भूमि प्रबंधन, प्रौद्योगिकी आदि की चर्चा किये बिना कहानी अधूरी सी लगती है। इसी तरह इस्लाम के भारतीय समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का विवादास्पद विषय भी छूट गया है। सेकुलर दृष्टि से देखने पर हमारे इतिहास के कुछ नामों अशोक, अकबर और औरंगजेब पर अलग से प्रविष्टियाँ प्रासंगिक होती। भारतीय इतिहास का यक्ष प्रश्न कि गणित और दर्शन की उपलब्धियाँ होते हुए भी भारत में प्रायोगिक विज्ञान का विकास क्यों नहीं हो सका और यहाँ युरोप जैसी औद्योगिक क्रांति सम्भव न हो सकी, आज भी पूरा उत्तर नहीं पा सका है। व्यापारिक पूँजी और भारत में प्राक्-आधुनिकता की प्रविष्टियाँ इस दृष्टि से उपयोगी हैं लेकिन नाक़ाफ़ी हैं। भारतीय आधुनिकता की खोज में इस प्रयास की सराहना करते हुए भी भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इतिहास पर कुछ और प्रविष्टियों की ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। गुणाकर मुले का काम इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आज के दलित मुक्ति संघर्ष के संदर्भ में शूद्रों, अतिशूद्रों के इतिहास से संबधित प्रविष्टियाँ भी अपेक्षित हैं। इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता का प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद है— उस पर भी एक नज़र तो डाली ही जा सकती है।

उक्त विश्वकोश का सबसे सबल पक्ष राजनीति शास्त्र और अंतर्राष्ट्रीय संबंध से जुड़ी प्रविष्टियाँ हैं। संख्या की दृष्टि से भी और गहराई की दृष्टि से भी। कुछ विशिष्ट प्रविष्टियों को रेखांकित करना समीचीन होगा। अस्मिता, आधुनिकता, आरक्षण, उत्तर-आधुनिकता, उदारतावाद, उपनिवेशवाद, उपयोगितावाद, समाजवाद, पूँजीवाद, फ़ासीवाद, धार्मिक राष्ट्रवाद, आतंकवाद, क्रांति, गवर्नेंस, नागरिकता, लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, मानवाधिकार, सत्ता, स्वतंत्रता, न्याय, समानता, भूमण्डलीकरण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता ऐसे सैद्धांतिक विषयों पर तो प्रविष्टियाँ हैं ही, साथ में भारतीय राजनीतिक दलों, भारतीय लोकतंत्र की अन्यान्य समस्याओं पर भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराई गयी है। सेकुलरवाद ऐसे विवादास्पद विषय पर सात प्रविष्टियाँ, भारतीय संविधान पर आठ प्रविष्टियाँ और आदिवासी प्रश्न पर चार प्रविष्टियाँ इस विश्वकोश की एक उपलब्धि ही कही जाएगी। इसके अलावा महत्त्वपूर्ण नये-पुराने राजनीतिक विचारकों जैसे लॉक, रूसो, बर्क, मिल, बेंथम, रॉल्स, वॉल्ज़र, नोजिक, हैबरमास के साथ-साथ रजनी कोठारी, सुदीप्त कविराज, जगजीवन राम, कांशीराम, कर्पूरी ठाकुर आदि पर भी प्रविष्टियाँ हैं। हाँ, कौटिल्य के अलावा प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है। क्या कारण है कि हम प्लेटो और अरस्तू जैसे दिग्गज राजनीतिक विचारक नहीं पैदा कर सके ? इस प्रश्न पर रोशनी डालने वाली सामग्री का अभाव है। आज के संदर्भ में कुछ अन्य ज़रूरी प्रविष्टियाँ भी जोड़ने पर विचार किया जा सकता है। बहुसंस्कृतिवाद के विवेचन के साथ-साथ अंतर्संस्कृतिवाद और परासंस्कृतिवाद पर भी सामग्री अपेक्षित है। सैयद अहमद ख़ान का ज़िक्र करते हुए हम मदन मोहन मालवीय को भूल नहीं सकते। वर्तमान में अन्ना हजारे के आंदोलन के बारे में प्रविष्टि का न होना भारी चूक ही कही जाएगी। इसी तरह राजनीतक इसलाम पर भी

प्रविष्टि होना ही चाहिए। आज का दलित-विमर्श आम्बेडकर-कांशीराम से आगे जा चुका है, उस पर और सामग्री की महत्ती आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

मीडिया, फ़िल्म और टीवी अध्ययन अपेक्षाकृत नये क्षेत्र हैं जिन पर एक स्थान पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराने के दुर्लभ कार्य को इस विश्वकोश में पचास महत्त्वपूर्ण प्रविष्टियों के माध्यम से सुलभ कराया गया है। भारतीय मीडिया और भारतीय सिनेमा को तीन-तीन प्रविष्टियों द्वारा उनके ऐतिहासिक विकास क्रम में जाँचा-परखा गया है। इससे निश्चय ही पाठक को मीडिया के मिशन से प्रोफ़ेशन तक के बदलते स्वरूप को समझने में मदद मिलेगी। इन प्रश्नों का उत्तर भी प्राप्त होगा कि किस तरह भारतीय सिनेमा हॉलीवुड और युरोपीय सिनेमा से भिन्न है और तीसरी दुनिया के कई देशों का सिनेमा आज जब हॉलीवुड के सामने घुटने टेक चुका है तो भारतीय सिनेमा कैसे न सिर्फ़ जीवित है बल्कि फल-फूल रहा है? वे स्टार, सेलिब्रिटी, सोप ऑपेरा आदि जैसे कई शब्दों के निहितार्थ भी ठीक से समझ में आएँगे। भारतीय सिनेमा में गीत-संगीत की विशिष्ट भूमिका रही है। इस विषय पर एक प्रविष्टि होती तो और भी सुखद होता। नायक और नायिकाओं की बदलती छवि, विशेषकर बदलते सामाजिक संदर्भों और नारीवादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में, भी चर्चा का विषय हो सकती है। टी.वी. और फ़िल्म के सेक्स और हिंसा के साथ विवादास्पद संबंधों पर भी विचार किया जा सकता है। सिनेमा और साहित्य के संबंधों की पड़ताल करती एक प्रविष्टि भी ज़रूरी है। भारतीय सिनेमा ने अभी-अभी एक सौ साल पूरे किये हैं। ऐसे में विश्व सिनेमा के कुछ चुनिंदा निर्देशकों के साथ कुछ भारतीय निर्देशकों सत्यजीत राय, ऋत्विक घटक, गुरुदत्त, श्याम बेनेगल, अदूर गोपालकृष्णन पर भी प्रविष्टियाँ देने पर आगे विचार किया जा सकता है। मीडिया विशेषज्ञों जैसे— मार्शल मैकुलहान पर प्रविष्टि हो सकती है। टी.आर.पी. के बारे में भी जानकारी अपेक्षित है। दुर्भाग्य से हिंदी में इन विषयों पर गम्भीर लेखन की परम्परा बिलकुल नहीं है। शायद इसी कारण सम्पादक अभय कुमार दुबे को अधिकांश प्रविष्टियाँ स्वयं लिखनी पड़ी हैं। भले ही इससे कुछ एकरसता आयी हो, अपने पुरुषार्थ के लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

साहित्य-अध्ययन और भाषाशास्त्र का क्षेत्र तो काफ़ी बड़ा है उसे समाज-विज्ञान की दृष्टि से 88 प्रविष्टियों में समेटना एक टेढ़ी खीर है। फिर भी, मुख्यत: हिंदी तक सीमित रह कर यह कार्य बखूबी पूरा किया गया है। यद्यपि रचनात्मक साहित्य को लगभग छोड़ दिया गया है लेकिन मुक्तिबोध पर दो प्रविष्टियाँ है। अज्ञेय और महादेवी भी हैं किंतु फिर अन्य (प्रसाद, पंत, निराला आदि) क्यों नहीं? पक्ष में कहा जा सकता है कि यह साहित्य का विश्वकोश नहीं है। किंतु फिर भी साहित्य और समाज, विचारधारा और साहित्य, साहित्यिक आंदोलनों/मंचों और साहित्य के समाज-शास्त्रीय अध्ययन पर तो सामग्री अपेक्षित है। भक्ति आंदोलन, भारत में भाषा नियोजन, संविधान सभा में भाषा विवाद, सम्पर्क भाषा : हिंदी/अंग्रेज़ी, आधुनिक हिंदी रंगमंच पर कई-कई प्रविष्टियों में जो जानकारी दी गयी है, बड़े काम की है। हिंदी जाति ऐसे विवादास्पद विषय पर कई प्रविष्टियाँ और हिंदी के लोकप्रिय साहित्य पर दो प्रविष्टियाँ सम्पादकों के साहस का परिचायक है।

जिस तरह विश्वकोश रचने का कहीं प्रशिक्षण नहीं मिलता, उसी तरह ऐसे विश्वकोश की समीक्षा का काम भी बड़ा टेढ़ा है जिसमें कई अनुशासन सम्मिलित हों। प्रविष्टियों के विस्तार की दृष्टि से किया गया उपरोक्त विवेचन तब तक अधूरा है जब तक गुणवत्ता की दृष्टि से भी उनकी समीक्षा न की जाए। यह काम अलग-अलग अनुशासनों के विशेषज्ञ ही कर सकते हैं, किसी एक के बस की यह बात नहीं। फिर भी कुछ प्रविष्टियाँ— आदिवासी प्रश्न, आज़ादी के लिए सशक्त संघर्ष, नयी सदी में मार्क्सवादी विमर्श, नागरिकता, प्रेम अध्ययन, भ्रष्टाचार, भूमण्डलीकरण, सेकुलरवाद और भारत के नवजागरण, इतिहास लेखन, संविधान, भाषा नियोजन और राम जन्म भूमि आंदोलन निश्चय ही उल्लेखनीय हैं और किसी भी गम्भीर विमर्शकार के लिए भी उतनी ही उपयोगी है जितनी

कि किसी सामान्य जिज्ञासु पाठक के लिए। प्रविष्टियों के आकार और संरचना को देखकर यह तो कहा ही जा सकता है कि उसमें बड़ी ही एकरूपता और संतुलन है। परिचयात्मक होने के कारण अनावश्यक विस्तार से तो बचा गया है किंतु महत्त्वपूर्ण विषयों को उपशीर्षकों के साथ कई प्रविष्टियों में भी बाँटा गया है जिससे विषय और पाठक दोनों के साथ न्याय हो सके। संदर्भों को लेकर हिंदी के वैचारिक विमर्श में जिस तरह की उदासीनता और अराजकता दिखाई देती है, उसे दूर कर प्रत्येक प्रविष्टि के साथ संदर्भ ग्रंथों की सूची देकर जो मानक इस विश्वकोश में स्थापित किया है उसके लिए इस कार्य में जुटे लेखक, सम्पादक, सभी प्रशंसा के पात्र हैं। इस विश्वकोश के माध्यम से परिचय पाने के बाद यदि कोई जिज्ञासु पाठक उस विषय में और अधिक जानकारी पाना चाहे तो भटकने की ज़रूरत नहीं। वर्तनी की एकरूपता और वैचारिक लेखों के लिए एक मानक संदर्भ-साँचा विकसित करना भी इस विश्वकोश की एक उपलब्धि कही जाएगी। अंत में दी गयी अनुक्रमणिका भी बड़ी उपयोगी है क्योंकि कई अनुषंगिक विषयों जो स्वतंत्र प्रविष्टि नहीं पा सके, की जानकारी मुख्य प्रविष्टियों के माध्यम से की जा सकती है। स्थान-स्थान पर छायाचित्रों के माध्यम से एकरसता को तोड़ने और प्रविष्टि को आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है। इतने बड़े आयोजन में प्रिंटिंग और प्रूफ़ की कुछ ग़लतियाँ छूट जाना स्वाभाविक है— जैसे पृष्ठ 936, पंक्ति 22 में बार के स्थान पर बाहर होना चाहिए। कई ऐसे नाम जो व्यक्तित्व-कृतित्व के वर्गीकरण में तो हैं किंतु अनुशासन में लिस्ट होने से रह गये हैं। जैसे रोमिला थापर। 'इयत्ता' के स्थान पर शायद 'स्व' या 'आत्म' शब्द ज़्यादा सम्प्रेषणीय होता।

समाज-विज्ञान के किसी भी आयोजन में मूल्यात्मक पक्षधरता का सवाल महत्त्वपूर्ण है। यह पक्षधरता उस विचार दृष्टि से निर्धारित होती है जो ऐसे आयोजन के पीछे होती है। इस नजरिये से जब हम उक्त विश्वकोश को देखते हैं तो इसकी अर्थवत्ता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आयाम सामने आता है। समकालीन भारत का सामाजिक विमर्श लम्बे अर्से से एक बौद्धिक विभाजन का शिकार रहा है। इसके तीन पहलू हैं। पहली है भाषाई फाँक जिसमें एक ओर अंग्रेज़ी का वर्चस्व रहा है और दूसरी ओर हिंदी व अन्य भारतीय भाषाएँ हैं जिनमें मौलिक समाज चिंतन के प्रयास बिरले ही हैं। परिणामस्वरूप, न केवल हिंदी का पाठक समाज-विज्ञानों में पनपते नई सोच से वंचित हुआ है, अपितु अंग्रेज़ी तक सीमित समाज-विज्ञान अपने समाज की जड़ों से कट गया है। ज्ञान के दो संसारों का निर्माण हुआ है जो प्रेरणा-स्रोत, विषय-वस्तु, अध्ययन-विचार सूत्र में एक-दूसरे से बुनियादी तौर पर भिन्न है। इसी से जुड़ा दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि अधिकांशत: हमारा सामाजिक विमर्श पश्चिम से आयातित वैचारिक कोटियों पर आधारित होने के कारण एक व्युत्पादिक या डेरिवेटिव विमर्श होकर रह गया है। यह सही है कि ऐतिहासिक रूप से समाज-विज्ञान का विकास पश्चिम में ही हुआ और समाज-अध्ययन के औजार और विचार सारणियाँ भी उसी ने गढ़ीं। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि पश्चिम ने पूर्व की एक छवि, जिसको एडवर्ड सईद ने अपने अध्ययन में दर्शाया है, भी बनाई और उसकी व्याख्या अपने उपकरणों से करके एक औपनिवेशिक विमर्श हम पर थोप दिया। औपनिवेशिक दासता से मुक्ति संघर्ष में हम उस छवि से तो मुक्त हो गये लेकिन अपने चिंतन में उस 'वैचारिक स्वराज' को न पा सके जिसकी ओर कृष्ण चंद्र भट्टाचार्य ने इशारा किया था। नतीजा यह हुआ कि हम अपने समाज को समझने, बदलने में उन्हीं विचार-कोटियों का सहारा लेते रहे जो पश्चिमी समाज के अध्ययन के दौरान वहाँ विकसित हुई थीं। इसके दुष्परिणाम का एक बड़ा और ज्वलंत उदाहरण जाति-प्रथा की हमारी अधूरी सैद्धांतिक समझ है। उसे हम वर्गीय आधार पर पूरी तरह नहीं समझ सकते। बौद्धिक विभाजन का तीसरा पहलू है हमारी शास्त्रीय ज्ञान-परम्परा और सामाजिक परिवर्तन के जन-आंदोलनों के अनुभव के बीच की दूरी। आज हम पुरुष-सूक्त और वर्ण-व्यवस्था की अवधारणाओं के आधार पर न दलित आंदोलन को समझ सकते हैं और न नारी मुक्ति आंदोलन को।

27_alok_tandon_Layout 1 5/1/2014 5:08 PM Page 374

ऐसे में मौलिक चिंतन की ज़रूरत है जो नयी विचार कोटियों का निर्माण कर सके। इस बौद्धिक, सृजनात्मक चुनौती का सफलतापूर्वक दायित्व उठाने के लिये ही, ऐसा लगता है, उक्त विश्वकोश की रचना और प्रकाशन हुआ है। बौद्धिक विभाजन की उपरोक्त वर्णित दीवार इसने गिरा दी है। एक ओर हिंदी समाज-विज्ञान के वैश्विक विमर्श से सीधे-सीधे जुड़ गई है तो दूसरी ओर शास्त्रीय ज्ञान-परम्पराओं के बारे में भी यथेष्ठ सामग्री उपलब्ध करायी गई है। उन लोगों को भी स्थान दिया गया है जिन्होंने अपनी भाषा में मौलिक चिंतन का साहस दिखाया। हिंदी में यह एक महती बौद्धिक परिघटना है। अब उसमें वैश्विक स्तर का सामाजिक विमर्श सम्भव है। कांट ने जो बात ज्ञानोदय के संदर्भ में कही थी, उस तर्ज़ पर हम कह सकते हैं कि इस विश्वकोश के प्रकाशन से हिंदी अब वयस्क हो गई है, उसे आगे बढ़ने के लिए किसी बैसाखी की जरूरत नहीं है। बौद्धिक हलकों में इस महाविस्फोट की गूँज दूर तक सुनायी पड़नी चाहिये।

अंत में, कहा जा सकता है कि समाज-विज्ञान और मानविकी का यह विश्वकोश अपने उद्‌देश्य में उस क्रिकेट खिलाड़ी की तरह ही सफल है जो अपने पहले ही मैच में शतक लगाकर नाबाद रहे। निश्चय ही ज्ञानकोशों के दायरे में इसने अपनी शक्तिशाली उपस्थिति दर्ज करा दी है किंतु साथ ही अगले संस्करण के लिए प्रत्याशाएँ और ज़िम्मेदारी भी बढ़ा दी है। हिंदी क्षेत्र के छात्रों, अध्यापकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और गम्भीर पाठकों के लिए इस अमूल्य निधि को उपलब्ध कराने के लिए लेखक, सम्पादक और प्रकाशक सभी धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं— विशेष रूप से अभय कुमार दुबे जिन्होंने इस टीम को नेतृत्व प्रदान किया और इस श्रमसाध्य कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। यदि हम चाहते हैं कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की व्यवहृत भाषाओं में स्थान मिले, ज्ञान के उच्चतर अनुशासनों में भी हिंदी में पठन-पाठन हो, गम्भीर शोध हो और हिंदी मात्र अनुवाद की भाषा न बनी रहे तो इस विश्वकोश की रचना एक मील का पत्थर है। व्यक्तिगत और सार्वजनिक पुस्तकालयों में इसका होना अनिवार्य है।